



अद्वैत द्वैत त्रैत और एकत्व के सिद्धान्त



श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अद्वैत द्वैत त्रैत और एकत्व के सिद्धांत

लेखक- श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (अध्यक्ष स्वाध्याय मंडल)

१४ वा वैदिक व्याख्यान माला, स्वाध्याय मंडल, पारडी

This rare book edited and recreated by-

Aman Kumar.

ANCIENT DHARMA

[subscribe now]



त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्व के सिद्धान्त

बहुत समय के पूर्व से अर्थात् अनेक शताब्दियोंसे "द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत" ये वाद भारतवर्ष में प्रचलित रहे हैं। इनमें 'त्रैत और एकत्व' ये दो वाद सांप्रत में और मिले हैं। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और शुद्धाद्वैत" ये तीन बाद अद्वैतवाद के अन्दर सम्मिलित हो सकते हैं। यद्यपि इनमें परस्पर थोड़ा भेद है, तथापि ये तीनों अद्वैत का ही प्रतिपादन करते हैं। श्री शंकराचार्यने अद्वैत का प्रतिपादन किया, श्री रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत माना, और श्री वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत स्वीकारा है। इनमें परस्पर मन्तव्य की भिन्नता तो है ही, पर इन तीनों का सिद्धान्त अद्वैत है, इसमें संदेह नहीं। ये अपने सिद्धान्तको "अद्वैत" मानते हैं, 'एकत्व नहीं मानते।

इस शताब्दी में 'त्रैत' और 'एकत्व' ये दो वाद जनता के सामने आ गये हैं। द्वैतवाद तो माध्वसंप्रदायका ही वाद है। इनके अनुयायी भी कन्नड आदि प्रान्तों में बहुत हैं। श्री मध्वाचार्य शुद्ध द्वैतवादी थे। मुक्ति में भी जीव विष्णुरूप तो बनता है, परंतु विष्णु से-परमेश्वर से सदा पृथक् रहता है, यह इनका सिद्धान्त है। इनकी संगति से सब प्रकार के अद्वैतवादी या एकत्ववादी नरकगामी हैं और अद्वैतवादियों की संगति से सब द्वैतवादी नरकगामी हैं !! एकत्ववादी अद्वैत में सम्मिलित हो सकते हैं और त्रैतवादी द्वैत में संमिलित हो सकते हैं।

षट्पदार्थवादी, पञ्चपदार्थवादी, चतुर्विंशति पदार्थ वादी, तथा ऐसे अनेक पदार्थवादी द्वैत वा त्रैत में समाविष्ट हो सकते हैं। इस तरह 'एकपदार्थवादी' और 'अनेक पदार्थवादी' ऐसे दो ही भेद इन सबके होते हैं। अब इनका विचार इस लेखमें करना है।

"एकत्व, अद्वैत, द्वैत और त्रैत" ये वाद परस्पर विभिन्न हैं, वा ये केवल दृष्टिबिन्दु के ही भेद हैं इसका विचार इस लेखमें करना है। प्रायः सभी पाठक कहेंगे, कि इनमें मन्तव्य का भेद स्पष्ट दिखाई देता है, अतः इनमें मन्तव्य की भिन्नता है या नहीं, इसका विचार करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। पाठकों का यह मत हमें विदित है। पाठकों का ऐसा मत होने पर भी हम यह लेख उनके सामने रखना चाहते हैं। पाठक इसका विचार करें।

भिन्नता की सापेक्षता

किसी समय भिन्नता वस्तुगत होती है। जैसा मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि की भिन्नता है। यह वस्तुगत भिन्नता है। दूसरी भिन्नता सापेक्षभिन्नता है। एक तरुण प्रथम कक्षा में पढ़ता है, दूसरा ७ वी में पढ़ता है और तीसरा १४ वी में पढ़ता है। सातवां का तरुण प्रथम कक्षावाले से अधिक ज्ञानी है, और चौदवीवाले से कम ज्ञानी है। एक ही मनुष्य इस तरह अपेक्षाकृत छोटा या बड़ा कहा जाता है। वस्तुतः वह मध्यम स्थान में रहनेवाला मनुष्य जैसा है वैसा ही है, परंतु अपेक्षा के कारण छोटा या बड़ा कहा जाता है। यह अपेक्षाकृत भेद है, यह वस्तुगत भेद नहीं है। इससे सापेक्षभेद का स्वरूप ध्यान में आ सकता है।

इस लेखका विचारणीय प्रश्न यही है कि 'त्रैत, द्वैत, अद्वैत' में वस्तुगत भेद है, या सापेक्षता के कारण भेद की प्रतीति होती है।

वेद, उपनिषद् और गीता में इस विषय के संबंध में किस तरहका प्रतिपादन किया है, इसका विचार इस लेख में करना है। प्रथम श्रीमद्भगवद्गीता के वचनों का विचार करेंगे, पश्चात् उपनिषदों के वचनों का और अन्त में वेद के मंत्रों का विचार करेंगे-

एकत्व का प्रतिपादन

श्रीमद्भगवद्गीता एकत्व बोधक वचन यह है- **वासुदेवः सर्वमिति**। भ० गी० ७।१९ 'यह सब वासुदेव का रूप है।' 'यह सब विश्व विष्णु का रूप है'; यह निःसन्देह एकत्व का प्रतिपादन करनेवाला वचन है। अब द्वैत का प्रतिपादन करनेवाला वचन देखिये-

द्वैत का प्रतिपादन

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥भ० गी० १५/१६

'इस लोक में- इस विश्व में क्षर और अक्षर ये दो पुरुष हैं। ये जो सब भूत हैं वे सब क्षर हैं और कूटस्थ पुरुष अक्षर हैं।' इस तरह यहां इसका प्रतिपादन स्पष्ट है। इसी के पर्याय यहां देते हैं जो शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं-

क्षर	-	अक्षर
जड	-	चेतन
प्रकृति	-	पुरुष
क्षेत्र	-	क्षेत्रज्ञ
शरीर	-	शरीरी
अचेतन	-	चेतन

इस तरहके नाम अनेक स्थानों पर आ गये हैं। ये पद द्वैत का वर्णन करते हैं। यदि द्वैत का ही सिद्धान्त गीता का माना जाय, तो त्रैत का वचन भी इसी गीता में देखिये-

त्रैत का प्रतिपादन

उत्तमः पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७॥ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ भ० गी० १५

"इन क्षर-अक्षरों से भिन्न एक तीसरा उत्तम पुरुष है, जिसको अव्यय परमात्मा कहते हैं जो ईश्वर इन तीनों लोकों में व्यापक हो सबका धारण पोषण करता है। जिससे यह क्षर से श्रेष्ठ और अक्षर से उत्तम है, इसलिये इसको लोक में और वेद में पुरुषोत्तम कहते हैं।

इस तरह इस गीता में (१) एकत्ववाद है, (२) द्वैतवाद है और (३) त्रैतवाद भी है। एक ही ग्रंथ में ये तीनों वाद, किस तरह संगत हो सकते हैं ? ऐसा लोग पूछते हैं!

यहां शंका होती है कि गीता के सिद्धान्तानुसार पुरुष एक है, दो हैं वा तीन हैं? ऐसे वचनों को देखकर कई कहते हैं कि गीता परस्पर विरुद्ध वचन हैं, अथवा इस गीता में पीछे से प्रक्षेप हुआ है। गीता में या किसी ग्रंथ में प्रक्षेप है ऐसा कहना, अथवा परस्पर विरोध है ऐसा एकदम कह देना, अयोग्य है। किसी एक दृष्टिबिन्दु से जो सुसंगत प्रतीत होगा, वही दूसरी दृष्टी

से प्रक्षिप्त या असंगत भी प्रतीत होगा। इसलिये हमें यह उचित है कि हम किस दृष्टिबिन्दु से ये वाक्य लिखे गये हैं, परीक्षा करें और लेखक के दृष्टिबिन्दु को जाननेका यत्न प्रथम करें।

उपनिषदों में एकत्ववाद

श्रीमद्भगवद्गीता में जिस तरह " **वासुदेवः सर्वमिति** " कहा है, वैसे ही वाक्य उपनिषदों में भी हैं। इस एकत्व की सिद्धता प्रथम करके देखनी चाहिये और इन वचनों का भाव समझनेका यत्न करना चाहिये। देखिये ये वचन –

ओंकार एवेदं सर्वं । छा० उ० २।२३।४

गायत्री वा इदं सर्वं । छा० ३।१२।१

सर्वखलु इदं ब्रह्म । छां. ३. १४. १

प्राणो वा इदं सर्वं भूतं । छ. ३।१५.४

अहमेव इदं सर्वं । छां. ५.२.६ /७.२५.१

एतदात्म्यमिदं सर्वं । छां. ६ .९. ४

स एव इदं सर्वं । छां. ७/२५.१

आत्मा वा इदं सर्वं । छां. ७.२५/२

स इदं सर्वं भवति । बृ. उ. १।४।१०

इदं सर्वं यदयमात्मा । बृ. उ. २.४.६ /४.५.७

इदं अमृतं इदं ब्रह्म इदं सर्वम् । बृ. उ. २/५/१

एतत् ब्रह्म एतत् सर्वं । बृ. ५/३/१

ओमितीदं सर्वं । तै. उ. १ .८. १

ब्रह्म खलु इदं वाव सर्वं । मुण्डक १; नू. पू. २२; ४१ नृ. उ. १

सर्वमोङ्कार एव । मुण्ड० १

सर्व ह्येतब्रह्म मुण्ड० २

सर्व हायमात्मा । नृ. उ. ७

ब्रह्मैवेदं सर्वं सच्चिदानन्दरूपं । नृ. उ. ७

ब्रह्म वा इदं सर्वं । नृ. उ. ७

सद्ब्रह्मैदं सर्वं चिद्ब्रह्मैदं सर्वं । नृ. उ. ७

आत्मा हीदं सर्वं सदेव । नृ. उ. ८

सूक्ष्मः पुरुषः सर्वं । शिरस उ० ३

नारायण एवेदं सर्वं । नारा० उ. २

इन उपनिषदों के वचनों में कहा है कि जो ओंकार, गायत्री, प्राण, अहं, सः, आत्मा, ब्रह्म, सत्, सूक्ष्मः पुरुषः, नारायणः आदि नामों से बताया जाता है वह यह दृश्यमान संपूर्ण विश्व ही है । ये वचन स्पष्ट हैं और यहां संदेह के लिये कोई स्थान नहीं है। अब इन वचनों के साथ वेद के वचन देखिये-

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ऋ. १०।१०।२

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । यजु. ३१।२ काण्व यजु. ३५.२, साम ६१९; अथर्व १९/६.४; तै. आ. ३।१२।१

सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः । वा० य. ४०।१७; ईश उ. ७

जो भूतकाल में हो चुका था, जो वर्तमान काल में है और जो भविष्य कालमें होगा वह सब पुरुष अथवा आत्मा ही है ।

ये सब वचन 'एकत्व'वाद की सिद्धि करनेवाले हैं। जो भी कुछ यहां है वह सब ईश्वर का रूप है। जो गीता के "वासुदेवः सर्व " (७.१९) इस वचनका भाव है वही इन उपनिषद्वचनों का और इन वेद के मंत्रों का भाव है। वेद में तो एकत्वं अनुपश्यतः एकत्वका दर्शन कराया है।

अद्वैत और एकत्व

अद्वैतवाद और एकत्ववाद ये दो पद पृथक् अर्थ बताने वाले हैं | अद्वैत का अर्थ 'दो नहीं' ऐसा है। और 'एकत्व' का अर्थ 'निःसंदेह एक' ऐसा है। अद्वैतवादी 'माया' को मानते हैं। एकत्ववादी माया को नहीं मानते। इसलिये एकत्ववाद पृथक् है और अद्वैतवाद पृथक् है। वेदमंत्रों में " **तत्र कः मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।** " (वा. य. ४०१७, काण्व ४०/७; ईश ७) एकत्व पद है, परंतु अद्वैत पद नहीं है। पाठक इस भेद को समझें और एकत्व तथा अद्वैत को एक ही न समझें।

गीता में 'वासुदेवः सर्व' (७.१९) कहा है वैसा ही वेदमें भी 'पुरुषः सर्व' (ऋ. १०/९०.२) कहा है। तथा गीता में-

अनन्तरूपः विश्वरूप । गी. ११।१६

ततोऽसि सर्वः। गी. ११.४०

'अनन्तरूपी विश्वरूपी ईश्वर है, अतएव वह सर्व है ।" अर्थात् विश्वरूप और सर्व का अर्थ एक ही है। विश्वरूप अनंतरूप, सर्वरूप ये सब पद एक ही भाव बताते हैं। देखिये-

वेदों में एकत्ववाद

त्वष्टारं... विश्वरूपं उपह्वये । ऋ. १।१३।१०

विश्वरूपं बृहन्तम् । ऋ. १.३५.४

विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ । ऋ. ३.३८.४; वा. य. ३३/२२

विश्वरूपः पुपोष प्रजाः । ऋ. ३.५५.१९

वृषभो विश्वरूपः । ऋ. ३/५६.३

विश्वरूपं बृहस्पतिं । ऋ. ३.६२.६

त्वष्टा सविता विश्वरूपः । ऋ. १०/१०/५

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपः । ऋ. ६.४७/१८

पुरुषरूप उग्रः (ईशानः) । ऋ. २।३३।९

पुरुषरूपं (अग्नि) । ऋ. ५/८/१

ज्योतिरसि विश्वरूपं । वा. य. ५.३५

त्वष्टारं इन्द्रं पुरुषरूपं । वा. य. २८/९

ब्रह्म पुरुषरूपं वि तिष्ठे । अथ० ९/१५/१९

इस तरह वेदमंत्रों में विश्वरूपी (त्वष्टा) सर्व स्रष्टा ईश्वर, पोषणकर्ता परमेश्वर, (बृहस्पतिः) ज्ञानी ईश्वर, इन्द्र ज्योतीरूप अथवा ब्रह्म है ऐसा कहा है। जो विश्वरूपी होगा, वही सर्वरूपी होगा और उसी को 'सर्व' अथवा 'विश्व' कहा जा सकता है। इस रीति से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो पद वेद के मंत्रों में है वे ही पद उपनिषदों में हैं और वे ही पद उसी अर्थ में गीता में लिये हैं। इस कारण जो उपपत्ति वेदमंत्र की लग सकती है वहीं उपनिषद् और गीता के वचनों की भी लग सकती है। अतः इस गीता में आये वचनों को प्रक्षिप्त या असंगत कहने की आवश्यकता नहीं है। वेद में भी वैसे ही अर्थ के मंत्र और पद हैं इस लिये यदि संगति लगेगी तो वेदमंत्र - उपनिषद् गीता की इकट्ठी ही लगेगी और न लगनी होगी तो किसी की भी नहीं लगेगी। परंतु वेदमंत्रों की असंगति, या वेदमंत्रों में प्रक्षेप आदि कहने के लिये कोई तैयार नहीं होगा। इसलिये जिस पद्धति से वेदमंत्रों की संगति लगेगी उसी पद्धति से उपनिषद् और गीता के वचनों की भी संगति लग सकेगी।

यहां तक वेदमंत्रों में जहां 'एकत्ववाद' है वे मंत्र हमने देखे | अब द्वैत और त्रैतवाद के वेदमंत्र हम देखते हैं-

त्रैतवाद के मंत्र

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ * ऋ. १।१६४।२० अथर्व ९.९ २० निरु० १४/३०

" दो पक्षी साथ रहनेवाले मित्र एक ही वृक्ष पर पास पास बैठे हैं। उनमें एक मीठाफल खाता है और दूसरा फल न खाता हुआ चमकता रहता है। "

इस मंत्रमें ““दो पक्षी जीव और ईश्वर है और ये दो पक्षी प्रकृतिरूप वृक्षपर बैठे हैं ”
ऐसा यहां कहा है। यहां तीन पदार्थ कहे हैं। इसलिये यहां त्रैतवाद स्पष्ट दीखता है। पक्षी चेतन हैं और हलचल करनेवाले हैं, अतः ये 'सुपर्ण' (पक्षी) निःसंदेह जीव और ईश्वर हैं और ये चेतन और सत् प्रयत्नशील हैं। वृक्ष अचल वस्तुका वाचक है, अर्थात् यह वृक्ष प्रकृतिका वाचक है। इस तरह प्रकृति, जीव और ईश्वरका बोध इस मंत्र से होता है। इस कारण इस मंत्र को त्रैतमत का बोधक मान सकते हैं।

इसी मंत्रमें चेतन पक्षी (सुपर्ण) हैं और अचल जड वृक्षका वर्णन भी है। इस कारण जड चेतन, क्षर अक्षर प्रकृति पुरुष इस द्वन्द्व का बोधक होने के कारण यह द्वैतबोधक मंत्र है ऐसा भी कह सकते हैं।

एक ही सूक्तमें ये वर्णन वेदोंमें हैं, इसके एक दो उदाहरण अब देखिये --

एक ही सूक्त में तीनों वाद

ईशावास्यं इदं सर्वं । वा. यजु. ४०.१; ईश० १

'ईश्वर इस सब विश्व में व्यापता है। ' यहां 'ईश' एक पदार्थ है और 'इदं' वाचक 'विश्व' दूसरा पदार्थ है। यह वर्णन निःसंदेह द्वैतका वर्णन है। इसी सूक्तमें और देखिये-

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते
॥ वा० य० ४०.६; ईश ६

'जो सब भूत आत्मा में और आत्मा को सब भूतों में देखता है।' इसमें ' आत्मा और भूत' ये दो पदार्थ मानने से यह मंत्र द्वैत का प्रतिपादन करता है। तथा 'आत्मा' से जीवात्मा-परमात्माका बोध होता है, इस कारण यही मंत्र त्रैत मत का भी प्रतिपादन करता है। ऐसा कह सकते हैं। अब इसी सूक्त में

एकत्ववादका प्रतिपादन देखिये - यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत्
विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ वा. य. ७ ईश० ७

'जिस विज्ञानी पुरुषको सब भूत आत्मा ही हो गये, उस एकत्वका दर्शन करनेवालेके लिये शोक और मोह कैसे प्राप्त होंगे? अर्थात् वह (एकत्वं अनुपश्यतः) एकत्व दर्शन करनेवाला

शोक मोह से दूर होगा। यहां 'सब भूत आत्मा ही हो गये' यह वाक्य 'यह सब निःसंदेह ब्रह्म है' इस अर्थ का ही बोधक है।

सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् । इदं सर्वं खलु ब्रह्म एव ॥

इन दोनों वाक्योंका भाव एक ही है और ये दोनों एकत्ववादका प्रतिपादन करते हैं। यजुर्वेद के चालीस वें अध्याय के ही ये तीनों मंत्र हैं। एक ही इस आत्मसूक्त में द्वैत, त्रैत और एकत्व का प्रतिपादन है। जैसे गीता ने ये तीनों वाद हैं वैसे ही इस ईश उपनिषद् अथवा यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में आत्मसूक्त में ये तीनों वाद हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी विशेष दृष्टिबिन्दु से ही इन वचनों का विचार करना चाहिये। अब और एक सूक्त देखिये-

पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यं । ऋ. १०.१०.२

'पुरुष ही यह सब है जो भूतकालमें था और जो भविष्य में होगा, और जो वर्तमान काल में है। तीनों कालों में जो है वह पुरुष, परमेश्वर ही है। यह एकत्ववाद का मंत्र है। यहां 'पुरुष' शब्द 'प्रकृति-पुरुष' मे से पुरुष अर्थात् केवल चेतन आत्मा का वाचक मानने से यह मंत्र एकत्ववाद का प्रतिपादन करता है ऐसा सिद्ध होगा। परंतु 'पुरुष' पद का अर्थ (पुरि शेते) प्रकृतिमें व्यापनेवाला ऐसा मानने से यह 'पुरुष' पद ही 'प्रकृति-पुरुष' का वाचक होता

अर्थात् यह 'पुरुष' पद ही द्वैत का अथवा त्रैत का प्रतिपादक हो जाता है। पुरुष जीव और ईश्वर का समानतया बोध करता है। इससे द्वैत तथा त्रैत का बोध यह मंत्र करता है। इसी सूक्त में और देखिये-

एक में तीन और तीनों का एक

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । ऋ. १०/१०/१

'हजारों आंख, हजारों बाहु, हजारों सिर और हजारों पांवों वाला यह पुरुष है।' यहां हजारों प्राणियों के शरीर परमात्मा के तथा जीवात्मा के शरीर हैं ऐसा वर्णन है। यहां जीवोंकी अनंत सत्ता वर्णन की है, और इन सबका अन्तर्भाव परमेश्वर के विश्वशरीर में होने से यह सब संसार परमेश्वरका रूप है, यह एकत्ववाद भी हुआ, और अनंत जीवात्मा के शरीर भी हुए और एक

परमात्मा और जड़ सृष्टी को निर्माण करनेवाली जड़ प्रकृति यह देव और त्रैत भी इसी सूक्त में प्रतिपादित हुआ। तथा- **त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः " पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ऋ. १०/९०.४**

‘इस पुरुषके तीन भाग ऊपर मूल स्वरूप में हैं और इसका एक अंश यहां वारंवार विश्वरूप बनता है। ये सब वर्णन स्पष्ट हैं और इस तरह एकत्ववाद, द्वैतवाद और त्रैत वाद वेद के एक ही सूक्त में है। इसलिये ये वचन विशेष दृष्टिबिन्दु से ही देखने चाहिये ।

‘एकं सत्’ (ऋ० १।१६४।४६) इस मंत्र में एकत्ववाद है और इस मंत्र में द्वैत तथा त्रैतवाद भी है। जो विश्वरूप देवताका वर्णन करनेवाले मंत्र हैं वे एकत्ववाद ही मंत्र हैं, परंतु जिस मंत्र में ‘पुरुष’ देवता है, वह ‘पुरि वसति इति पुरुषः’ इस व्युत्पत्ति से ‘पुरि और उसमें बसनेवाला ’ ऐसे दो पदार्थोंका बोध करता है। इसलिये पुरुष देवता वाले मंत्र द्वैतवाद के बोधक हैं। अस्तु इस तरह ‘एकत्व, द्वैत और त्रैत’ का बोध करनेवाले वेदवचन जैसे हैं वैसे ही उपनिषदों में और वैसे ही गीता में भी समानतया हैं। गीता, उपनिषद और वेदमंत्र इन तीनों स्थानों में ‘एकत्व द्वैत और त्रैतवाद’ के वचन मिलेजुले हैं। इसलिये गीता में ही परस्पर विरुद्ध वचन हैं, या प्रक्षिप्त वचन हैं, ऐसा कोई नहीं कह सकते । यदि गीताके वचनों को हमने परस्पर विरुद्ध अथवा प्रक्षिप्त कहा तो वैसा ही उपनिषदों और वेदमंत्रोंको भी कहना पड़ेगा । पर ऐसा वेद मंत्रों को कहना दुस्साहस है। इसलिये इस विषय में अधिक खोज करनी चाहिये ।

इस विषय में श्वेताश्वतर उपनिषद में एकवचन बड़ा मनन करने योग्य है वह अब देखिये-

तीनों का विन्दन

ज्ञाज्ञो द्वावजावीशानीशावजा होका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता। अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् श्वे० १.९

(द्वो) दो (ज्ञाज्ञौ-ज्ञ + अज्ञौ) ज्ञानी [ब्रह्म] वा अज्ञानी [जीव], (अज्ञौ) दोनों ही अजन्मा (ईशानीशौ = ईश + अनीशौ) समर्थ-स्वामी [ब्रह्म] व असमर्थ [अल्प शक्ति वाला जीव] [व] [तीसरा] (हि) निश्चय से (एकः) एक (अजा) अजा, [अजन्मा, अनादि] और है [प्रकृति] [जो, कि] (भोक्तृ + भोग्यार्थ युक्ता) भोगने वाले [जीव] के भोगों के अर्थों से युक्त [अर्थात् भोग के लिए] है (च) और (आत्मा) परमात्मा (अनन्तः) अनन्त, (विश्वरूपः) विश्वरूप

(सारा विश्व उस सर्वव्यापक का अवयवरूप है) [और] (हि) निश्चय से (अकर्ता) [वह] कर्म व उसके फल-बन्धन में नहीं फंसता। (यदा) जब (त्रयम्) तीनो (ब्रह्म, जीव वा प्रकृति) (विन्दते) मिलते है तब (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है।

एक ज्ञानी ईश्वर है और दूसरा अज्ञानी जीव है। ये दोनों अजन्मा हैं, इनमें एक ईश है और दूसरा अनीश अर्थात् असमर्थ है। इनके अतिरिक्त एक और अजन्मा प्रकृति है वह भोक्ता जीवोंके भोग भोगने के लिये नाना पदार्थ देती है। एक विश्वरूप अनन्त आत्मा अकर्ता है। ये तीन पदार्थ अब एकत्र मिलते हैं तब उसको ब्रह्म कहते हैं। यहां जो कहा है वह नीचे कोष्टक में देते हैं।

ज्ञ+अज्ञ	अज्ञा+विश्वरूप आत्मा
ईश+अनीश	प्रकृति+पुरुष
ईश+जीव	अनन्त+सान्त

विश्वरूप परमात्मा, अल्प प्रमाणवाला जीवात्मा, और भोग्य प्रकृति ये तीन पदार्थ इस मंत्र में कहे हैं। ये तीनों पदार्थ त्रयं यदा विन्दते, एतत् ब्रह्म " जब मिल जाते हैं, एक रूपमें मिलते हैं, उस विन्दन को ब्रह्म कहते हैं। तथा और देखिये-

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ श्वे० १/१२

"भोक्ता जीव, भोग्य प्रकृति और प्रेरक ईश्वर इन तीनोंका मनन करके यह विविध ब्रह्म है ऐसा कहते हैं। "

यह तीनों का विन्दन किस तरह होता है। विन्दन का अर्थ 'ज्ञान से बुद्धि से या मनन से जानना या समझना' है। तीनों का पृथक् भान भी होता है और तीनों के एकत्वका भी भान होता है। यह विन्दन क्या है, कैसा होता है और किस तरह अनुभव में जाता है इसका मनन करना चाहिये। इसका विचार इस तरह किया जाता है।

एक में तीन और तीनों का एक

यह एक सापेक्ष दर्शनका शाश्वत नियम है कि एक में तीन भाव होते हैं और तीनों भावों में मिलकर एक का संपूर्ण दर्शन हो जाता है। किसी का संपूर्ण दर्शन करना हो तो उसके तीनों भाव लो देखना चाहिये

किसी मनुष्यका दर्शन करना हो तो सामने से और पीछे से ऐसे दोनों ओर से उसका दर्शन करना आवश्यक है। पर जिस समय सामने से दर्शन किया जाता है उस समय इसके पृष्ठभाग का दर्शन नहीं होता। तथा जिस समय पृष्ठ भाग का दर्शन होता है उस समय उसके सामने के भाग का दर्शन नहीं होता। अर्थात् मनुष्य वस्तु के आधे भागका ही एक समय दर्शन कर सकता है। इसलिये उसका संपूर्ण दर्शन करना हो तो एक ही समय उसके दोनों भागों की कल्पना एक स्थान पर करनी चाहिये। (१) यह इसका सामनेवाला भाग है, (२) यह इसका पीछेका भाग है, (३) दोनों भाग मिलकर यह संपूर्ण पुरुष हुआ है। ये तीनों कल्पनाएं पृथक् हैं, पर इन तीनों भावों का साक्षात्कार मनुष्य करता है, तब उसको सत्य वस्तु का ज्ञान होता है। वस्तु एक है पर उसके ये तीन भाव है। यही तीनों में एक का और एक में तीनों भावों का दर्शन करना है। ऐसा किये बिना संपूर्ण वस्तु का दर्शन ही नहीं होता।

और एक उदाहरण देखिये। रुपये की एक ओर राजा का चित्र है, उसी रुपये की दूसरी ओर वेलपत्ती का चित्र है। एक ही रुपये के ये दो भाव सत्य हैं। प्रत्यक्ष हैं। पर संपूर्ण रुपये में ये दोनों भावों का विंदन हुआ है यह भी उतना ही सत्य है। इन तीनों भावोंमें रुपयेका जो दर्शन होता है वह संपूर्ण रुपये का दर्शन है। मनुष्य जिस रुपये का नित्य दर्शन करते हैं, वह रुपयेके आधे भाग का ही दर्शन है। मनुष्यकी आंख एक ही समय संपूर्ण रुपयेका दर्शन करने में असमर्थ है। दृष्टी दृश्य के बांधे भाग का ही दर्शन करती है। दिव्य ही संपूर्ण वस्तु का दर्शन कर सकती है जो तीनों भावों का दर्शन हे वही सत्य और संपूर्ण दर्शन है।

और एक उदाहरण यहाँ विचारार्थ लेते हैं। एक शक्कर का बतासा है। इसमें वजन है, वहीं जड़ भाव है, इस जड़ भाव के टुकड़े हो सकते हैं। बतासे के दो चार दस बीस या अधिक टुकड़े होते हैं। यही बतासे का क्षर भाव है। हर एक मनुष्य इस क्षर भाव का दर्शन करता है। इसी क्षर भाव व्यापक मीठास है। मीठापन है। क्षर भाव का अनुभव, इसके वजन का या जड़भाव का अनुभव हाथ करता है। पर उसके साथ रहे मिठास का अनुभव जिन्हा करती है औ कहती है

कि इसमें मीठास ओतप्रोत भरी है। बतासे के जितने चाहिये उतने टुकड़े करो, उन सबमें मीठास अटूट है। यह मीठास अक्षर भाव है। पाठकों को घन भाव और उसमें व्यापने वाला मीठेपन का भाव ऐसे दोनों भाव बतासे में हैं, इसका पता लग सकता है। हर एक मनुष्य यह जान सकता है। पर ये दोनों भाव बतासे में विन्दन होकर मिले रहते हैं। अर्थात् एक जड भाव, दूसरा मीठास का भाव और तीसरा जिसमें ये दोनों भाव मिले हैं वह बतासा है। यही तीन भावोंमें वस्तु के एकत्व का भाव है और वस्तु के एकत्व में तीनों भावों की सत्ता है। बतासेमें रहनेवाला वजन बतानेवाला दृश्य धन भाव दूसरा मीठास का अदृश्य भाव और इन दोनों भावों का विन्दन जहां हुआ है वह पूर्ण बतासे का तीसरा भाव है। यही तीनोंका एक भाव है और एकमें तीन भाव हैं। तीन भावों को पृथक् देखना यह सर्व साधारण दृष्टी है और तीनों भावोंके विन्दन को एक रूपमें देखना यह दिव्यदृष्टी है। पृथग्भावोंका दर्शन साधारण दृष्टी से होता है और पृथक् भाव में एकत्व का दर्शन दर्शन दिव्य दृष्टीसे होता है।

विश्व में जड़भाव है, जिसको प्रकृति कहते हैं। इस जड़ भावने जडता, घनता, वजन तथा स्थूलता आदि भाव है। इसको प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च स्थूलभूत आदि कहते हैं। इसके टुकड़े होते हैं, इस कारण इसको 'क्षर' कहते हैं। दूसरा भाव इसी में है जिसको अक्षर भाव कहते हैं, इसको आत्मा जीवात्मा आदि नाम देते हैं। जड़ के विभाग होते हैं, वैसे इसके टुकड़े नहीं होते। यह चेतन, स्फूर्ति देनेवाला, ज्ञान ग्रहण करनेवाला ज्ञानरूपी है। इनको क्षर पुरुष और अक्षर पुरुष कहते हैं। इनका वर्णन गीता में ऐसा किया है-

द्वाविमौ परुषी लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥ यस्मात् क्षरमतीतोऽहं अक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ गी. १५/१६-१८

ये श्लोक इसी लेखके प्रारंभ में दिये थे। अब पुनः यहां दिये हैं क्योंकि इनके कुछ विशेष शब्द हैं जो बड़े महत्व के हैं, जिनके मनन से तीनों में एक और एक में तीन 'यह कूट सुलझा जा सकता है। इन श्लोकोंका कथन ऐसा है-

'क्षर और अक्षर ये दो पुरुष इस लोक में हैं। क्षर सब भूत हैं और कूटस्थ आत्मा अक्षर है। उत्तम पुरुष परमात्मा इनसे भिन्न है जो अव्यय ईश्वर तीनों लोकों में व्यापकर उनका धारण करता है,

यह ईश्वर क्षर पुरुष से श्रेष्ठ है और अक्षर से भी उत्तम है इसलिये लोक में और वेद में इसे पुरुषोत्तम कहा गया है।

पुरुष का अर्थ

यहाँ 'क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और उत्तम पुरुष ऐसे तीन पुरुष कहे हैं। यहां तीनों को पुरुष ही कहा है अतः पुरुष पद का अर्थ देखने की यहां आवश्यकता है।

पुरि वसति, पुरि शेते

ऐसी इस पुरुष शब्द की व्युत्पत्तियां हैं। जो पुरि में रहता है, जो पुरि में सोता है, जो पुरि में व्यापता है वह पुरुष है। यह 'उत्तम पुरुष' परमात्मा, परमेश्वर, पर ब्रह्म है वह सर्व विश्व में व्यापक है इसलिये विश्वरूपी पुरि में व्यापने के कारण पुरुष कहा गया यह ठीक ही है। यहां एक जड भाव है जिसको क्षर पुरुष कहा है, दूसरा 'अक्षर पुरुष' यह जीव आत्मा है, यह जीव जिसके टुकड़े होते हैं। जिससे दूसरा अक्षर पुरुष है जो शरीर में व्यापता है। इसलिये इसको भी पुरुष कहा जा सकता है। परन्तु यहां केवल जीव शरीर में व्यापने का ही भाव नहीं है परंतु जीव भाव से सर्वत्र व्यापक होने से ये दोनों भाव जहां मिले हैं वह परमात्मभाव है। यह इसको यहां अक्षर पुरुष कहा है। गीता में **नित्यः सर्वगतः स्थाणुः** (गी. २१२४) यह आत्मा-शरीरधारी आत्मा नित्य और सर्वगत है ऐसा कहा है। यह जीवभाव की सर्वगतता सर्वत्र जीवभाव की स्थिति होनेके कारण मानी गयी है। जीवात्मा तो अपने शरीर में व्यापता है। वैसा प्रत्येक जीवके शरीर में जीव व्यापता है इस कारण भी यह व्यापक है। अब क्षर पुरुष जो सर्व भूतों के रूपों से विश्व में जड करके प्रसिद्ध है, पञ्चमहाभूत सृष्टी के जड सृष्टी के रूप से प्रसिद्ध है, वह किस पुरि में व्यापने के कारण 'पुरुष' कहलाता है ? यह प्रश्न यहाँ विशेष महत्त्वका है। जीवात्मा जीव शरीर में और परमात्मा विश्वरूपी शरीर में व्यापक है, पर जड शरीर किसमें व्यापक है ? जिस कारण इस जड को भी 'पुरुष' कहा है। जड़-चेतन, क्षर-अक्षर, प्रकृति-पुरुष ये परस्पर के साथ परस्पर व्यापक हैं, अर्थात् ये परस्पर मिले जुले हैं, यह भाव यहां है। इस तरह परस्पर के साथ मिले जुले होने से दोनों की परस्पर व्यापकता है, इसीलिये यहां 'अक्षर पुरुष जीवात्मा को जैसा पुरुष कहा है, उसी तरह क्षर पुरुष प्राकृतिक शरीर को भी पुरुष कहा है।' जहां शरीर है वहां जीव है और जहां जीव है वहां शरीर है। इसका अर्थ ये परस्पर व्यापक है अतएव ये पुरुष हैं।

वस्तुतः प्रकृति व्याप्य है और आत्मा व्यापक है। इस कारण आत्मा को ही पुरुष कहना चाहिये। परंतु यहां प्रकृति को भी पुरुष कहा है। इसका हेतु यह है कि आत्मा और प्रकृति मिली जुली हैं। इसलिये इनको परस्पर व्यापक कह सकते हैं। जिस तरह कीचड़ में मिट्टी और जल परस्पर मिले जुले रहते हैं अतः परस्पर संमिश्रित हैं ऐसा कहा जाता है, उसी तरह प्रकृतिरूपी मिट्टी में आत्मा का जल मिला है। इन दोनोंका कीचड़ बना जिससे सब सृष्टी बनी है। इस तरह ये दोनों परस्पर के साथ मिले हैं, अतः इनको पुरुष कहा है।

यहां एक जड़ भाव है जिसको क्षर पुरुष कहा है, जिसके टुकड़े होते हैं। जिससे दूसरा अक्षर पुरुष है जो आत्मभाव है। एक क्षरभाव और दूसरा आत्मभाव है। ये दोनों भाव जहां मिले हैं वह परमात्मभाव है। यह पूर्ण पुरुष है, पुरुषोत्तम है। इसमें दोनों भाव संमिलित होनेसे यह पुरुषोत्तम है और दोनों से श्रेष्ठ है। केवल क्षर पुरुषसे यह पुरुषोत्तम श्रेष्ठ है, इसका कारण यह है कि इसमें जीवात्मभाव मिला है। इसी तरह अक्षर पुरुषसे भी यह उत्तम है इस कारण यही है कि यह पुरुषोत्तम जीव- भाव और जड़भाव को अपने अन्दर संमिलित करके रहता है।

दाये शरीर से पूर्ण शरीर श्रेष्ठ है और बाये शरीरसे भी उत्तम है, क्योंकि दाये और बाये शरीर इसमें मिले हैं। दोनों का संमीलन एक एक की अपेक्षा से श्रेष्ठ होना स्वाभाविक हैं। इसी तरह क्षर पुरुष, और अक्षर पुरुष ये दोनों पुरुषोत्तम में मिले जुले होने के कारण इनमें से प्रत्येक की अपेक्षा से पुरुषोत्तम श्रेष्ठ है। यह तो स्वयं सिद्ध है।

इस विश्व में स्थान स्थान में 'तीन में एक और एक में तीन' इस तरह रहे हैं। तीनों भावों का पृथक् पृथक् दर्शन करना यह सामान्य दृष्टि है और तीनों के अन्दर एकत्व का दर्शन करना यह दिव्यदृष्टि है।

जो अर्जुन को दिव्यदृष्टि दी वह यही है। इससे अनेकत्व में एकत्वका दर्शन होता है। जल और मिट्टी ये दो पदार्थ हैं, परंतु कीचड़ में दोनों एकरूप होते हैं। पति, पत्नी पृथक् है, परंतु कुटुंब कहने से उनका मीलन एकत्व में हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पृथक् हैं पर आर्य कहने से इन तीनों में एकरस दीखने लगता है। राजा और प्रजा पृथक् रहते हैं, परंतु राष्ट्र कहने से उसमें दोनों आ जाते हैं। यह तो व्यावहारिक भेदों में अभेद दर्शन है। परंतु क्षर- अक्षर- पुरुषोत्तम में तो इससे भी एकरूपता है जो इससे पूर्व बतासे के उदाहरणसे बतायी है। बतासा

एक वस्तु है, उसका एक भाव वजनदार तथा टुकड़े होनेवाला है और दूसरा भाव मीठास का है, ये दोनों भाव बतासे में एकरूप हो जाते हैं।

इसी तरह क्षर भाव और अक्षर भाव ये दोनों पुरुषोत्तम भाव में एकरूप हो जाते हैं। संपूर्ण विश्वरूप एक ही बतासा है, इसमें एक क्षरभान है और दूसरा जीवभाव है। ये दोनों पृथक् अनुभवमें आते हैं, परंतु परमात्मभाव में ये एकत्र मिल जाते हैं। क्षर-अक्षर, जड-चेतन, प्रकृति, पुरुष ये भेद कल्पना में अनुभव किये जाते हैं। परंतु ये भेद वस्तुगतः नहीं हैं। परमात्मा, परब्रह्म, परमेश्वर एक अद्वितीय वस्तु है, इसका एक भाव क्षर प्रकृति है और दूसरा भाव अक्षर आत्मा है।

जीव भाव

यहां जीवभाव क्या है इस विषय में पाठकों के मनमें संदेह हो सकता है। गीतामें कहा है-

ममैव अंशो जीवल्लोके जीवभूतः सनातनः । [गीता १५/७]

ईश्वरका सनातन अंश जीवल्लोकमें जीव बना है। 'यहां जीवको ईश्वरका अंश बताया है। अर्थात् अंशभाव जीव है, पूर्णभाव परमेश्वर है। तत्त्वदृष्टी से अंश और अंशी एक ही हैं। वेद में भी ऐसा ही कहा है-

अमृतस्य पुत्राः । -ऋ. १०।१३।१

'अमृत के अमर ईश्वर के पुत्र' ये जीव हैं। पिता परमात्मा है और उसके पुत्र ये जीव हैं।

त्वं पितासि नः ॥ ऋ. १/३१/१०

आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता । ऋ. १।३१।१४

आदिः पिता प्रमतिः... मर्त्यानां । ऋ. १।३१।१६

अदितिर्माता स पिता स पुत्रः । ऋ. १.८९ | १६; अथ. ७/६/१

द्यौ पिता जनिता । ऋ. १।१६।३३

सखा पिता पितृतमः पितृणां । ऋ. ४।१७।१७

हव्यवाडग्निरजरः पिता नः । ऋ. ५।४।२

पिता माता मधुवचाः सुहस्ताः । ऋ. ५।४३।२

त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन् मानुषाणाम् । ऋ. ६/१/५

न हि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥ ऋ. ७।३२।१९; अथ. २०/८२/२
पिता च तन्नो महान् यजत्रा । ऋ. ७/५२/३

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । वा. य. १७।२७ ऋ. ८ ९८ । ११ अथ.
२०११०८/२

विश्वस्य राजा... पिता मतीनां । ऋ. ९।७६।४

पिता देवानां जनिता विभूवसुः । ऋ. ९/८६/१०

त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः । ऋ. १०/६४ । १०

ऋषिता न्यसीदत् पिता नः । ऋ. १०/८१.१

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक
एव तं संप्रश्रं भुवना यन्त्यन्या ॥ ऋ. १०/८२.२

यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कं । ऋ. १०/१००/५

अत्रा नो विश्वपतिः पिता । ऋ, १०।१३५/१

उत वात पितासि न उत भ्रतोत नः सखा ॥ ऋ० १०।१८६।२

स नः पिता जनिता स उत बन्धुः । अथ० २।१।३

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्च । अथ० १५/५/२

इन मंत्रों में परमेश्वरको हमारा पिता कहा है। यहां इन मंत्रों में, परमेश्वरको, पिता, माता, बन्धु, जनिता (जनक सखा, बुद्धिदाता (प्रमतिः), श्रेष्ठ पिता (पितृतमः) कहा है। पूर्व स्थान में 'अमृतस्य पुत्राः' (ऋ. १०।१३।१) में अमर परमेश्वर के ये सब पुत्र हैं ऐसा कहा था। उसी का स्पष्टीकरण ये मंत्र कर रहे हैं और ये कह रहे हैं कि वह परमेश्वर हम सबका मातापिता है।

पिता पुत्रका संबंध अंश -अंशी ' भाव का ही संबंध रहता है। पिता के संपूर्ण शरीर का सत्व पुत्र के शरीर में अंशरूप से आता है। यदि परमेश्वर हम सबका पिता है और उस परमपिता के हम सब पुत्र हैं, तो यह निःसंदेह सत्य है कि उसका अंश हमारे अन्दर अवश्यमेव है। इसीलिये गीता में कहा है कि 'मेरा अंश यहां जीव हुआ है।' (गी. १५/७) परमेश्वर में ३३ देवतायं सूर्य वायु जल आदि हैं, मनुष्य के देह में भी उन्हीं देवताओं के अंश हैं। इस तरह जितने तत्व ईश्वर में हैं उतने जीव के देह में हैं। इस रीति से यह पिता पुत्र का संबंध। पिता का अंश वीर्यरूप से पुत्रमें जाता है और वही यहां शरीर रूप से विस्तारित होता है।

अंश और भंशी एक जातीके होते हैं। वैसे ही परमेश्वर और जीव आत्मा की दृष्टि से सजातीय हैं। आत्मा कहने से परमेश्वर तथा जीव का बोध होता है। प्रकृति को आत्मा का शरीर माना है। इस तरह प्रकृति + [जीव+परमात्मा] ये तीन होनेपर भी एक होते हैं, विश्वशरीरी परमेश्वर है यह प्रतिपादन इससे पूर्व किया ही है। परमेश्वर के विश्व- शरीर का वर्णन वेदों तथा अन्यत्र भी बहुत है, उसमें से कुछ वर्णन अब यहां देखिये-

**अग्निर्मूर्धा चक्षुषी सूर्यचन्द्रौ दिशः श्रोत्रे वागू विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वं
अस्य पद्भ्यां पृथिवी होष सर्वभूतान्तरात्मा ॥मुण्डक २.१/४**

**इन्द्रादयो वाहच आहुरुकता कर्णौ दिशः श्रोत्र- ममुष्य शब्दः । नासत्यदत्रौ परमस्य
नाले ब्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः ॥ श्री० भागवत २।१**

'अनि मुख, सूर्यचन्द्र ये नेत्र हैं, दिशाएं कान हैं, वायु प्राण है, अन्तरिक्ष हृदय है, पृथ्वी पांव है यह सर्वभूतों के अन्तरात्मा का विश्वरूप शरीर है।' यह वर्णन मुण्डक उपनिषद और भागवत में है। वेदके मंत्रों में भी ऐसा ही वर्णन है -

**यस्य त्रयस्त्रिंशदेवा अंगे सर्वे समाहिताः ॥ १३॥ यस्य त्रयस्त्रिंशदेवा अंगे मात्रा
विभेजिरे ॥२७॥ यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः । अग्निं यश्चक आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय
ब्रह्मणे नमः ॥३३॥ अथर्व १०.७**

'जिस परमात्मा के अंग में शरीर में तैंतीस देव रहते हैं। जिस परमात्मा के शरीर में तैंतीस देव शरीर के अवयव बनकर रहे हैं। जिसका एक आंख सूर्य है और दूसरा भांख चन्द्रमा हुआ है, अग्नि जिसका मुख बना है, उस श्रेष्ठ ब्रह्म के लिये मेरा प्रणाम है।;

इस तरह परमेश्वरके शरीर का वर्णन वेदमंत्रों, उपनिषद्वचनों और अन्य ग्रंथों में है। अर्थात् सब प्राकृतिक विश्व उसका शरीर है। जैसा मनुष्य आत्मा और शरीर मिलकर होता है, वैसा ही परमेश्वर परमात्मा और विश्व मिलकर होता है। यह विश्व उसका शरीर है और सब जीव उस परमेश्वर के विश्वदेह में रहनेवाले अणुजीव हैं। इस वर्णन से 'प्रकृति + जीव + परमात्मा' मिलकर एक वस्तु होती है। तीन होते हुए एक है और एक होते हुए तीन हैं। इसीलिये गीता, उपनिषदों में तथा वेदमंत्रों में कई वचन एकत्व बोधक, कई वचन द्वैत बोधक और कई वचन

त्रैत बोधक होते हैं। किसी भी वचन को प्रक्षिप्त या विरुद्ध मानने की जरूरत नहीं है। यह तो दृष्टिबिन्दु के कारण भिन्नता दीखती है, वस्तुतः तीनों प्रकारके वचन तीन दृष्टि-बिन्दुओं से ही हैं।

जहां एकत्वदर्शन का वर्णन है वह तीनों भावों का एक रूप में विन्दन का वर्णन है, जहां द्वैत का वर्णन है वह प्रकृति- पुरुष का विभिन्न वर्णन है और जहां त्रैत का वर्णन है वहां वह प्रकृति - जीव- ईश्वर के विभिन्न भावों का वर्णन है। एक ब्रह्म के दो रूप हैं ऐसा स्पष्ट वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद में है-

**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च, मर्त्यं च अमृतं च । यदेतन्मूर्तं यदन्यत्
वायोश्चान्तरिक्षाच्च** बृ० उ० २/३/१

एक ब्रह्मके दो रूप हैं, एक मूर्त रूप है और दूसरा अमूर्त है, एक मर्त्य है और दूसरा अमर है। वायु और अन्तरिक्ष रूप जो है वह अमूर्त है, और पृथ्वी आप रूप जो है वह मूर्त है। यह स्थूल सूक्ष्म सब जो है वह सबका सब ब्रह्म का ही रूप है। जो ब्रह्म है वही आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर है। इसका भाव पूर्वोक्त रीति से समझना चाहिये।

परमेश्वर के विश्वशरीर की कल्पना आलंकारिक ही क्यों न हो, पर वह वेद-उपनिषद-गीता-पुराणों में एक जैसी है। इसलिये वह एक दृष्टिबिन्दु है ऐसा मानना युक्ति युक्त हैं।

वस्तुतः देखा जाय तो प्रकृति, जीव, परमेश्वर ये तीन पृथक् तीन पात्रों में रखे जानेवाले पदार्थ नहीं हैं। इनका संमिश्रण ही जहां देखो वहां है। किसी स्थान पर भी केवल प्रकृति, केवल जीव तथा केवल परमेश्वर मिलेगा ही नहीं। इनकी विभिन्नता कल्पना से ही जानी जाती

है। सर्वत्र जो अनुभव में आता है वह इन तीनों का मिश्रण ही है। यही तीनोंका विंदन, या मिश्रण ब्रह्म नाम से वर्णन किया गया है।

जिस तरह मिट्टी, जल और अनिका मिश्रण कीचड नाम से कहा जाता है, जिस कीचड से ईंटें बनकर उन ईंटों से छोटे मोटे मंदिर बनाये जाते हैं। इस कीचडमें मिट्टी है, जल है और अग्नि भी है। अभि होने के कारण कीचड का रूप दिखाई देता है। उसके अन्दर जल होने के कारण वह जल मिट्टी के परमाणुओं को इकट्ठा पकड रखता है, और मिट्टी घन या जड है दी। इस तरह तीनोंका यह मिश्रण, या यह कीचड, बडे बडे मंदिर बनाता है, वैसा ही प्रकृति- जीवन- ईश्वरका यह मिश्रण जिसका नाम ब्रह्म है विश्व के विविध रूप बना देता है। यहां 'जीव' के स्थान पर हमने 'जीवन' पद रखा है। यह जीवन ही प्रकृति के परमाणुओं को एकत्रित करता है और परमात्मा सबका धारण करता है।

अस्तु। इस तरह तीनमें एक हैं और एक में तीन हैं। इसलिये हम कह सकते हैं, एक दृष्टी से त्रैततवाद भी सत्य है, दूसरी दृष्टिसे द्वैतवाद भी सत्य है और तीसरी दृष्टिसे एकत्ववाद भी सत्य है, इसी को कई अद्वैतवाद भी कहते हैं। इसीलिये एक ही ग्रंथ में इन तीनों वादों के वचन मिलते हैं। जहां जिस दृष्टि से जो वचन आया है वहां वह उसी दृष्टी से देखना चाहिये। ऐसा देखने से इन वचनों में परस्पर विरोध दीखेगा नहीं और सत्य वस्तु तत्व का सामंजस्य ही दीखेगा।

जिस वचन की जो दृष्टी होगी, वह वचन उसी दृष्टी से ठीक प्रतीत होगा। भिन्न दृष्टी से वही वचन सदोष दिखाई देगा। कई लोग ये वचन गीता में और उपनिषदों में देखकर एकदम इनमें प्रक्षेप हैं, ये परस्पर विरुद्ध हैं ऐसा बोलते हैं, इतना ही नहीं परंतु वे वचन वहां से हटा देने चाहिये, ऐसा भी बोलते हैं। परंतु जब वे लोग वेद मंत्रों में वैसे ही वचन देखते हैं, तब वे उन मंत्रों के अर्थ को बदल देने का यत्न करते हैं। पर यह सब वास्तव दृष्टिकोण न समझनेका फल है, यह सब संगति लगाने के अज्ञानका फल है। इसलिये पाठकों को यह दृष्टिकोण समझने का यत्न करना चाहिये। एकबार यह समझमें आगया, तो वह भूला नहीं जायेगा और वचनों की संगती लगाना सुगम होगा

खींचातानी का स्वरूप

दृष्टिकोण न समझनेके कारण बड़े बड़े लोगों ने किस तरह खींचातानी की है यह संक्षेप से यहां बताते हैं। ईश उपनिषद में संभूति और असंभूतिका भाव 'समाज और व्यक्ति' है, वह श्रीमान् शंकराचार्यजी ने लिया नहीं। दूसरा ही अर्थ किया, पर वह तृतीय मंत्र में लगा नहीं, इसलिये 'अत्र अकारलोपो द्रष्टव्यः' ऐसा लिखा। अर्थात् संभूतिके स्थान पर 'असंभूति' और असंभूतिके स्थानपर 'संभूति' लेना चाहिये। ऐसा लिखा। वेदमंत्र के पदोंकी तोड़ मरोड़ करने की जिसमें आवश्यकता होती है वह मत ही त्याज्य होता है। दृष्टिबिन्दु का ध्यान न करने से इनको ऐसा करना पडा।

उपनिषदों में 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य (छां. ६.८.७) है। इसके पद 'तत्+त्वं + असि' ये ही हैं। पर श्री मध्वाचार्यजी शुद्ध द्वैत माननेवाले ठहरे। इनको 'वह ब्रह्म तू है' यह अर्थ पसंद नहीं था। इसलिये इन्होंने 'तत्त्वं- असि' अर्थात् 'तू तत्त्व है' ऐसा अनर्थ किया। व्याकरण से 'तत् + त्वं + असि' ये भी पद होते हैं और 'तत्त्वं असि' ये भी होते हैं। पर पूर्वापर अर्थ की संगति से 'तत्+त्वं+असि' अर्थात् 'वह ब्रह्म तू है' ये ही पद ठीक हैं। पर ये पद श्री मध्वाचार्य मानने को तैयार नहीं। अपने मत को उपनिषदों के वचन पर लादना यह है, अतः यह ठीक नहीं। वास्तविक ऐसा करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि किस तरह एकत्व है और किस तरह द्वैत यह समझने से ऐसा करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। और एक उदाहरण देखिये-

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। ऋ० १०/९० वा. य. ३१

पुरुष ही यह सब है, जो भूतकालमें था और जो भविष्य काल में होगा 'यह वाक्य तो एकत्व प्रतिपादक स्पष्ट है। पर जो द्वैती और त्रैती हैं उनको यह एकत्ववाद पसंद नहीं। इसलिये वे इस वाक्य का अर्थ इस तरह बदल देते हैं। 'जो भूतकाल में था और जो भविष्य काल में होगा वह सब (पुरुषः करोति) पुरुष ही बनाता है। करने की क्रिया का अध्याहार करके ये लोग इस वेदवचन का अर्थ बदल देते हैं। और जो वचन स्पष्ट रीति से एकत्ववादका प्रतिपादन करता है, उसीको द्वैतवाद का प्रतिपादक बना डालते हैं। पर ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं

एकत्वका यह एक दृष्टिकोण है। अथर्ववेद में कहा है-

एकं यदङ्गं अकृणोत् सहस्रधा । अथर्व ० १०/७.९ '

अपना एक अंग उसने सहस्रधा विभक्त किया, जिससे यह सब विश्व बना है। तथा-

पादोऽस्य इह अभवत् पुनः । ऋ० १०/९०/४

इसका एक अंश यहां बारंबार उत्पन्न होता है। ' अर्थात् यह अंश सहस्रधा विभक्त होकर इस विश्वकी नाना मूर्तियां बनती हैं। यहीं बात अन्य रीति से वेद वचन स्पष्ट करते हैं-

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । ऋ०

प्रभु अपनी अनन्त शक्तियों से अनन्तरूप बनता है। ' ये सब वचन हैं जो बताते हैं कि वेदमंत्रों में एकत्ववाद है इसलिये एकत्व प्रतिपादक मंत्रोंको तोड़ मरोड़कर बदल देनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल जिस दृष्टिकोण से वह वचन लिखा है वह उसी दृष्टिकोणसे समझने की मावश्यकता है। वह दृष्टिकोण ध्यान में रखने से सब वचन यथा-

स्थान ठीक दीखते हैं और सब विरोध मिट जाता है तथा सब वचनोंकी सुयोग्य संगति लग जाती है।

एकत्ववादको माननेवाले प्रकृति-पुरुष- परमेश्वरका सर्वत्र विन्दन देखते हैं और उससे सब सृष्टी बनी है ऐसा मानते हैं। एकत्ववाद के सब वचनोंका भाव यही है। जगत् में किसी भी स्थानपर केवल प्रकृति नहीं है, केवल पुरुष नहीं है और केवल परमेश्वर भी नहीं है। मिलेजुले ये तीनों भाव सर्वत्र हैं, और मिलेजुले रूप में ये सर्वत्र और सदा रहते हैं। इन तीनों भावों का संमीलन अथवा संविदन सर्वत्र है और यही एकमात्र सर्वत्र है अतः यही एक वस्तु है। इसीका नाम एकत्व दर्शन है: |

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः । वा.प. ४०; ईश ५

इस एकत्व का दर्शन करनेवाले को शोक और मोह किस तरह हो सकते हैं।' इस एकत्र के दर्शन से मनुष्य शोक मोह के परे होता है। वह सदा आनंदमें रहता है। इस एकत्व को माननेवाले एकत्ववादी इस एक वस्तुके तीनों भावों को मानते ही हैं। इसलिये इस एक वस्तुमें तीन भात्र

सदा ही रहते हैं। अर्थात् यह एकत्ववाद त्रैत का विरोधी नहीं है। भावात्मक त्रैत है और वस्तुरूप एकत्व है।

जो सर्वत्र जड़-चेतन, प्रकृति-पुरुष, क्षर-अक्षर, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का दर्शन करते हैं वे द्वैतवादी हैं। ये पुरुषमें जीव तथा ईश्वरका भेद अंश-अंशी रूपसे है ऐसा मानते हैं और जड़ और चेतन इन दो तत्वों को मानते हैं। इनके द्वैत में जीव और शिवका भावात्मक भेद रहनेके कारण इनमें भी त्रैत तथा प्रकृतिको पुरुषकी शक्ति माननेके कारण शक्ति-मानसे शक्ति पृथक् न रहने के कारण इस वाद में भी एक-वादकी झलक रहती है। अर्धनारी नटेश्वरका रूपक इनका मत बतानेवाला है। नर-हर का अलंकार भी इनका ही। इन द्वैतवादियों ने इस रूपक से त्रैत और एकत्व की व्यवस्था अपने में उत्तम रीति से की है।

त्रैत में प्रकृति, जीव और ईश्वरका अस्तित्व है और यह प्रत्यक्ष सबको दीखता ही है, इस कारण इसका विरोध प्रत्यक्ष व्यवहार में तो कोई करता ही नहीं।

इस तरह तीनों वादों की व्यवस्था है और ये तीनों वाद पृथक् पृथक् दृष्टिबिन्दुओंसे अपने अपने स्थान में सत्य है

पाठक इस तरह इस त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्ववादको समझें और वेदादि वचनों का योग्य तात्पर्य ध्यान में लें और व्यर्थ बढ़ाये झगड़ों से दूर रहें।

एकत्ववाद में भी भावात्मक तीन पदार्थ है, द्वैत में भी आत्मा में दोनों आत्माओं का अन्तर्भाव होनेसे तीन पदार्थों के तीन भाव हैं और त्रैत में भी तीनों भावों में तीनोंका अनुभव है। इस कारण किसी भी मतका स्वीकार करनेसे "जड़भाव, जीवभाव और शिवभाव" इन तीनों भावोंको मानना ही पड़ता है। इसलिये भावात्मक तीन पदार्थों का त्याग किसी भी मत में नहीं है। तो भी तीन दृष्टिबिन्दुओं से ज्ञान दिया जाता है, इसलिये किसी समय एकत्वका दर्शन होता है, किसी समय द्वैत और त्रैतका होता है। वह बताना ही चाहिये। वह तवज्ञानके ग्रंथों में बताया है। इसलिये दृष्टि-बिन्दुके भेद के कारण एक वस्तुमें भी तीन भाव दीखते हैं और तीन भावों में भी एक वस्तु दीखती है। अतः ये तीनों प्रकार के वर्णन विभिन्न दृष्टिबिन्दुओं से ठीक हैं, न ये परस्पर विरुद्ध हैं और नाही इनमें कोई वचन प्रक्षिप्त है यह इस तरह जानना दिव्यदृष्टि है। यह न जानने से वचनों की संगति ठीक तरह नहीं लग सकती।

इसलिये पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस दिव्यदृष्टि को प्राप्त करें और धर्मग्रंथोंके वचनोंकी उत्तम संगति लगाकर उन वचनों से सत्यज्ञान प्राप्त करने का यत्न करें। सत्यज्ञान ही सबका तारण कर सकता है।

आज के युग के आचार्य महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी आर्य समाज के प्रवर्तक हैं। ये त्रैतमत के समर्थक हैं ऐसा सब मानते हैं। विशेषतः सब आर्यसमाजी अपने आपको 'त्रैतवादी' कहते हैं, पर आर्यसमाज में प्रवेश करने के दश नियमों में जो पहिला ही नियम है वह 'एकतत्त्ववादी' ही है। देखिये यह नियम ऐसा है-

आर्यसमाजका पहिला नियम- “सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।” इसमें स्पष्ट कहा है कि सब सत्यविद्या अर्थात् 'वेदादि शास्त्र' और विद्यासे समझे जाने वाले 'प्रकृति- जीव- ईश्वर' ये पदार्थ, इन सबका आदि मूल एकमात्र परमेश्वर है। अर्थात् परमेश्वर से वेदरूपी सत्य शाख प्रकट हुए और इस सत्य विद्यासे समझे जानेवाले प्रकृति जीव ईश्वर ये सब पदार्थ भी प्रकट हुए हैं। इन सबका आदि मूल एक मात्र परमेश्वर है। यह वैदिक एकत्व वाद ही है।

इस तरह त्रैतवादी महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी अपने नियमों में एकत्व सिद्धान्तको दर्शाते हैं। प्रकृति परमेश्वरकी शक्ति है और जीव अंश है ऐसा मानने से एक ही परमेश्वरका अस्तित्व रहता है। प्रकृति- जीव- ईश्वर ये तीन भाव हैं, पर पुरुषोत्तम एक ही है। यह जो हमने पूर्व स्थान में लिखा है कि **"एक में तीनों का विन्दन"** और "तीनों में एक की सत्ता यह जो मानते हैं वे ही इस नियमको इस तरह लिख सकते हैं। इससे त्रैत पक्ष का सर्वथा विनाश नहीं होता और एकत्व पक्ष का भी सर्वथा अभाव नहीं होता। परंतु ये दोनों पक्ष अपने अपने दृष्टिबिन्दु से यथास्थान विद्यमान रहते ही हैं। यह सच्चा दृष्टिकोण है यही वेद-उपनिषद- गीता में सिद्धान्तरूप से कहा है।

इसी कारण महर्षि हस्ताक्षरों से यह नियम इस तरह लिखा गया है। वह महत्त्वपूर्ण दृष्टी है और इसको ठीक तरह समझने से त्रैत और एकत्ववादका सामंजस्य उत्तम रीति से समझ में आ सकता है। त्रैत और एकत्व ये वाद एक ही वस्तुका वर्णन कर रहे हैं, परंतु दृष्टिबिंदु विभिन्न है। सापेक्षताका यही सिद्धान्त है।

अब हम कुछ अन्य उद्धरण इन्हीं के ग्रंथोंसे देते हैं। पंच महायज्ञ विधि (सं. १९३२)

'इसमें कोई शंका करे कि ईश्वरने किस वस्तुसे जगत्को रचा है? उसका उत्तर यह है कि (अभीद्धात् तपसः) ईश्वरने अपनी अनन्त सामर्थ्य से सब जगत्को रचा है। वेदान्त ध्वान्त निवारण (सं. १९३२)

इसी प्रकार पृष्ठ ५ पर लिखा है कि (ब्रह्म वा इदमि दि) सृष्टिके आदि में एक सर्व शक्तिमान ब्रह्म ही वर्तमान था । सो अपने आत्माको (नई ब्रह्मास्मीति तदेव- वित) स्वरूपका विस्मरण उसको नहीं होता । उस परना- त्मा के सामर्थ्य से ही सब जगत् उत्पन्न हुवा है। पृष्ठ १६ पर लिखा है कि " हे परमेश्वर अपने स्वसामर्थ्य तथा अनन्त पराक्रमसे भूमि, जल, स्वर्ग, तथा वि र्थात् भूमि से लेकर सूर्य पर्यन्त सब जगत्को बनाया है । रक्षण, वारण तथा प्रलय भी आप ही करते हैं। (ऋ. १।४।१३।१२)

वेद विरुद्ध मतखंडन (सं. १९३२) शताब्दी संस्करण पृष्ठ ७९१ पर लिखा है कि " प्रकार के सामर्थ्य निराकार परमेश्वर में नित्य दी विद्यमान हैं, उससे ही साकार जगत्को उत्पत्ति होती है । जैसे प्रमाण तैत्तिरीय उपनिषद् तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाश सम्भूतः भाकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिम्यो अन्नम्, अन्नाद्वेतः, रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषो अन्नरसमयः अर्थात् उसकी इस आत्मासे आकाश आकाशसे वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से शरीर उत्पन्न होता है, सो यहां यह शरीर अन्न रसमय कहाता है ।

उपदेश मंजरी (सं० १९३४) पृष्ठ १४ पर लिखा है कि " ईश्वर परम पुरुष सनातन ब्रह्म सब पदार्थोंका बीज है"।

पृष्ठ २० पर लिखा है कि "अखिल जीव और निर्जीव पदार्थ ईश्वर ने अपनी सामर्थ्य से निर्माण किये हैं।

पृष्ठ १२४ पर लिखा है कि " ईश्वर-सामर्थ्य ही, जगत् उत्पत्तिकी सामग्री हैं और उसका सामर्थ्य ही जगत्का उपादान कारण है । यह सामर्थ्य प्रगट हुआ तभी सृष्टि हुई और ईश्वर में इसका लय होने से प्रलय होता है । "

इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि महर्षिके इन व्याख्यानोंसे भी उनके ऐक्यवादी होने की पूर्ण रूपसे पुष्टि होती है।

इन उद्धरणोंके शब्दप्रयोग पूर्वोक्त मतका ही प्रतिपादन करते हैं। अस्तु। इस विषय में मतभेद के लिये स्थान हो सकता है यह हम जानते हैं। किसी विद्वानको यह अमान्य हुआ तो भी कोई हर्ज नहीं है।

एक ही सत् है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सु- पर्णो गरुत्मान् । एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥ ऋ. १.१६४

(एकं सत्) एक ही सत् है, दो या तीन या इनसे अधिक सत् वस्तुएं नहीं हैं। केवल एक ही अद्वितीय सत् है। इसी अद्वितीय एक मात्र सत् का वर्णन (विप्रा बहुधावदन्ति) ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे करते हैं, अनेक नामों से इसी एकका वर्णन करते हैं। वे ज्ञानी इसी एक अद्वितीय सत् को अग्नि, यम, मातरिश्वा, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् कहते हैं।

इस तरह 'एक सत्' है यह घोषणा वेद करता है। उसी एक सत् में आने के गुण देखकर ज्ञानी लोग उसीको अग्नि बोलते हैं, उसीमें वायु के गुण देखकर उसीको वायु या मातरिश्वा कहते हैं, उसीमें परमेश्वर के भाव देखकर उसी को इन्द्र कहते हैं। उसी में मित्रताका भाव देखकर उसको मित्र कहते हैं। इस तरह विश्व में जो देवताएं दिखाई देती है वे इसी एक सत् के रूप हैं, ऐसा अनुभव करके ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे उसी एक सत् का वर्णन करते हैं। अग्नि वायु जल के जो वर्णन हैं, वे सब वर्णन उसी एक सत्के ही वर्णन हैं क्योंकि अनेक रूपोंमें वही एक सत् विश्वरूप में खड़ा है।

इस मंत्र का अर्थ कई लोग ऐसा करते हैं कि अग्नि आदि नामों से उसी एक सत् अर्थात् परमात्मा या परब्रह्म का वर्णन होता है। परंतु यह सत्य नहीं है। वह परमात्मा, परब्रह्म या सत् अग्नि आदि रूपों में प्रकट होता है, इसलिये अग्नि का वर्णन उसीका वर्णन होता है। इसी तरह जल उसका रूप है इसलिये जल के वर्णन से उसीका वर्णन होता है। इसी तरह अन्यान्य देवताओंके वर्णनका भाव समझना योग्य है। इसीलिये वेद कहता है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः

। वा. यजु. ३२।१

(तत् एव अग्निः) वह ब्रह्म ही अग्नि है अथवा (अग्निः तत् एव) अग्नि निःसंदेह वह ब्रह्म है, किंवा (अभिः एव- तत्) अनि ही वह ब्रह्म है। इसी तरह, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही (ब्रह्म) ज्ञान है, वही जल है, वही प्रजापति है ।

अर्थात् पृथ्वी, आद्, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वृक्ष, प्रस्तर, पाषाण, पर्वत, नदियां आदि सब उसी परब्रह्म रूप हैं, यह संपूर्ण विश्व ही परब्रह्म का रूप हैं। विष्णु सहस्रनाम के प्रारंभ में ही कहा है कि-

" विश्वं विष्णुः "विश्व ही विष्णु है, विश्व ही विष्णुका स्वरूप है । अर्थात् विश्व के सत्र पदार्थ विष्णु के शरीर के अवयव हैं ।

वेदों में सूर्य उसके भांख है, वायु उसका प्राण है, अमि उसका मुख है, पृथिवी उसके पांव है, दिशाएं उसके कान हैं, इस प्रकारका वर्णन आता है ।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।

अग्निं यश्चक आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ अथर्व

ये मंत्र परमात्मा के विश्वरूपी देहका ही वर्णन कर रहे हैं। सूर्य चन्द्र अग्नि आदि देवताएं उसके शरीर के अवयव हैं। इससे 'सत् एक है उसीका वर्णन अग्नि जल वायु आदिके वर्णन से होता है' इस मंत्र का स्पष्टीकरण वेदद्वारा है । इसका सत्य अर्थ वेद मंत्रोंद्वारा इस तरह ही प्रकट हुआ

एक ही सत् है जो 'प्रकृति जीव-शिव' इन तीन रूप में प्रकट हो रहा है यह जो त्रैत और एकत्व का विचार चल रहा है, वह इस रीति से वेदमंत्रों द्वारा स्पष्ट हो रहा है। स्वयं वेद ही अपना भाव अनेक मंत्रों के द्वारा प्रकट कर रहा है। श्री महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती यह सब जानते थे इसलिये उन्होंने पहिले नियममें 'सबका आदि मूल परमेश्वर है' यह एकत्व वाद का प्रतिपादन किया है और उसी के तीनों रूपोंका 'प्रकृति- जीव-शिव' का वर्णन वाद स्वीकार करके किया है। इस तरह तीनों में एकत्व है और एकत्व में तीन है यह वैदिक दृष्टि है । यही हर एक ज्ञानी को स्वीकार करने योग्य है ।

किरणवाले तीन देव

**त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे चपत एक एषाम् । विश्वमेको अभिच शची-
भिः धाजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ ऋ. १।१६४।४४**

(केशिनः त्रयः) बालवाले अथवा किरणवाले तीन देव हैं। वे (ऋतुथा विचक्षते) ऋतु के अनुसार देखते हैं अथवा दिखाई देते हैं। (संवत्सरे) वर्ष में (एषां एकः वपते) इनमें से एक बीज बोता है। ऋतुके अनुसार बीज बोता है। (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे इनमें से (एकः) एक (विश्वं अभिचष्टे) विश्वको देखता है। और (एकस्य धाजिः ददृशे) एककी गति तो दीखती है। पर (रूपं न) उसका रूप दिखाई नहीं देता।

यहां किरणोंवाले तीन देवों का वर्णन है। ये तीनों किरणोंवाले देव हैं, ये प्रकाशमान हैं। प्रकृतिको "दैवी प्रकृति" कहा जाता है। अर्थात् यह प्रकृति चमकने वाली है, तेजस्विनी है, किरणोंवाली है। दूसरा जीवात्मा है वद आत्मा होने से ही प्रकाशमान है अर्थात् किरणोंवाला है। परमात्मा तो सबका प्रकाशक है ही। अर्थात् ये तीनों (केशिनः) किरणों वाले हैं। 'केशिन्' शब्द बालवाला इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। किरण ही बाल कहे जाते हैं।

इनमें से एक (ऋतुथा विक्षते) ऋतु के अनुसार कार्य करता है ऐसा दीखता है। सब सृष्टीभर में ऋतु के अनुसार फलफूल आते हैं, उगना फल देना और मरना यह हर एक के लिये ऋतु के अनुसार हो रहा है। सृष्टिमें (जायते) जन्मना, (अस्ति) होना, (वर्धते) बढ़ना, (विपरिणमते) परिणाम होना, (अपक्षीयते) क्षीण होना और (विनश्यति) नाश होना ये छः ऋतु दिखाई देते हैं। हर एक पदार्थ के साथ ये लगे हैं। हर एक पदार्थ इन छः ऋतुओं में से गुजर रहा है। अर्थात् यहां ऋतुओं के अनुसार कार्य हो रहा है।

(एषां एकः वपते) इनमें से एक बीज बोता है जिसके बीज से सृष्टी होती है और बढ़ती है। बीज देनेवाला पिता कहलाता है। जो पिता होता है वही बीज देता है, वीर्य सिंचन करता है और माता उसका धारण करती है और प्रजाकी उन्नति करती है। यही (एकः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे) एक अपनी शक्तियों से संपूर्ण विश्वका निरीक्षण करता है। अपने किरणोंसे सबको प्रकाशित करता है। 'शची' महाशक्ति है। उसके पास अनंत महती शक्तियां हैं। उन शक्तियों से वह विश्वको शक्तिमान करता है। सर्वत्र उसकी शक्तियों का संचार हो रहा है। अग्निमें तेजस

शक्ति, वायुमें जीवनीय शक्ति, अन्न में प्राणधारण शक्ति इस तरह अनेक शक्तियां वद प्रदान करता है और विश्वका पालन पोषण और संवर्धन करता है ।

इसकी (धाजि:) गति दीखती है। कहां क्या हो रहा है यह दीखता है। अग्नि जलता है, जल बहता है, वायु जीवन देता है इस तरह सर्वत्र गति हो रही है । वह गति इसी की शक्ति से हो रही है। यह गति दीख रही है, परंतु यह परमात्मा स्वयं (न रूपं) अरूप है, इसका रूप नहीं है । परंतु इस अरूपका यही विश्व रूप है क्योंकि इसकी शक्ति से ही यह शक्तिशाली हो रहा है। इसीके जीवनसे यह जीवित रहा है । यह अपनी शक्तियोंसे अग्नि रूप, जलरूप, वायुरूप होकर यहां खड़ा है ।

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । ऋग्वेद

इन्द्र प्रभु अपनी महती शक्तियों से अनन्तरूप होकर चलता है।' यहां 'माया' पद शक्तिका वाचक है । और यही प्रभु ' पुरुरूपः ' बहुरूपी होकर विश्व में घूम रहा है। अरूप का यह विश्वरूप है । यदी एक होता हुआ बहु हुआ है ।

इस मंत्र में " तीन देव हैं और वे किरणोंवाले हैं " ऐसा कहा है और यह देव अपनी शक्तियों से (पुरु रूपः) बहुत रूप धारण करता है ऐसा भी कहा है ।

इस रीति से ' एकके तीन और तीनोंमें एक ' है यह बात सिद्ध होती है । यह वेदकी परिभाषा है । यह जानकर ही वेदका ज्ञान समझना चाहिये ।

इस रीति से प्रकृति - जीव- परमेश्वर' ये तीन भाव बिलकुल नहीं हैं ऐसा कोई नहीं कहता । परंतु जिस तरह ' बतासे' में ' जड़ता+मीठास ' ये दोनों भाव रहते हैं और मिलेजुले रहते हैं, तथा इन दोनों में पूर्ण बतासा भी साथ साथ विद्यमान रहता है। वैसे ही ' जड़भाव+ चेतनभाव ' ये दोनों भाव सर्वत्र मिलेजुले रहे हैं और उन दोनों में 'शिव' भाव व्याप रहा है। तीनोंका कीचड़ सर्वत्र है । यह समझना चाहिये । ,

यहां यह हमने 'प्रकृति- जीव- ईश्वर का कीचड़ ऐसा शब्द प्रयोग किया है। कीचड़ शब्द योग्य नहीं और उच्च भावदर्शक भी नहीं है। परंतु दूसरा शब्द सूझता नहीं है। कीचड़ में ' मिट्टी+जल+अग्नि ' ये तीन पदार्थ रहते हैं। पर सूखनेपर जल दूर हो सकता है। ऐसी पृथकता

‘प्रकृति जीव-ईश्वर के विन्दन में नहीं है । 'विन्दन' शब्द अच्छा है। मिश्री के ढेले में ' ढेला+मीठास ' इन दोनोंका विन्दन हुआ है, कीचढ़ नहीं। विन्दन में दोनों रहते हैं, पर एक रूप होकर रहते हैं। मिश्री का ढेला हाथ में लेनेसे हाथको उसके वजन (जडभाव) का पता लगता है। जिह्वा को उसकी मीठास का ज्ञान होता है, नेत्र को उसका रूप दीखता है। तीन इंद्रियोंने तीन भावों का अस्तित्व देखा, अतः ये तीनों भाव पृथक् हैं।

पर 'मिश्री' वस्तु एक ही है। मिश्री की सत् है, परंतु हाथ ' जडव' कहता है, नेत्र रंगरूप कहता है और जिह्वा मीठास कहती है । ये अनुभव पृथक् हैं, पर एक ही वस्तुके, एक ही सतके ये तीनों भाव हैं । इस तरह यहां समझना चाहिये । तीन भावों में एक ही वस्तु का साक्षात्कार होता है ।

संपूर्ण विश्व में ' जड+जीव+शिव ' ये तीनों भाव मिले जुले हैं। देहधारी जीव मर गया, तो उसके शरीर से मुख्य अधिष्ठाता जीव चला जाता है, परंतु उस मृत देह के प्रत्येक अणु में अनेक जीव रहते हैं । वे सब उस देवके सड़ने पर छोटे जीवों के रूपसे प्रकट होते हैं । अर्थात् मृत देह में भी करोड़ों सूक्ष्म जीव होते हैं। इसी तरह जिसको निर्जीव लकड़ी या सुवर्णादि धातु कहते हैं, पर कीड़ा लकड़ी खाता है, सुवर्णादि धातु मनुष्य सेवन करता है । ये निर्जीव दीखनेवाले पदार्थ सजीव शरीर के सजीव विभाग बन जाते हैं । इस तरह विचार करने पर मालूम होगा कि जीव भाव सर्वत्र और सदा रहता है। एक अधिष्ठाता जीव चला जाता है, परंतु वहां सैंकड़ों अणुजीव रहते हैं । शिव भाव तो सर्वत्र है । इन तीनोंका विन्दन होता है, मेल मिलाप होता है उसका नाम 'ब्रह्म' है । देखिये –

'सर्वं खलु इदं ब्रह्म । नेह नानास्ति किंचन ।

यह सब ब्रह्म है, यहां नाना पदार्थ नहीं है।' यह सब वर्णन तीनों के विन्दन का है। इस विन्दन का सत्य तत्व न समझने से द्वैताद्वैत के वादविवाद उत्पन्न हुए जिनकी कोई आवश्यकता नहीं है । जिस रीति से यहां प्रतिपादन किया है, उस तरह पाठक करेंगे, तो पाठकों के मन में किसी तरह एकत्व द्वैत और त्रैत के विषय में विवाद उत्पन्न ही नहीं होगा। उपनिषद आदि ग्रंथोंके वचनों के सब वचन ठीक रीति से समझमें आ जायेंगे और सब वचनों की उत्तम, संगति लग जाने से शुद्ध ज्ञान प्राप्त होने का आनन्द भी प्राप्त होगा । यही आनन्द प्राप्त करने के लिये मनुष्यका जन्म है।

